डा० शारदा सिंह
जनरल फेलो (आई० सी०पी०आर०)

जैन शिक्षा-पद्धति

विद्या मनुष्य को विनयशील बनाती है। विनय से वह योग्य बनता है, योग्यता से धन अर्जित होता है व धर्म की प्राप्ति होती है और इसी विद्या, बुद्धि और विवेक के आधार पर मनुष्य संसार के अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ एक विलक्षण प्राणी माना जाता है। शिक्षा ही उसके बुद्धि और विवेक का विकास करती है।

भारतीय संस्कृति में तीन प्रकार की परम्पराएं देखने को मिलती हैं– ब्राह्मण, जैन और बौद्ध। यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति का एकाग्र रूप से अध्ययन करने की दृष्टि से जैन शिक्षा-पद्धति का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। भारत में श्रमण और ब्राह्मण शिक्षा-पद्धतियों का समानान्तर विकास हुआ है। श्रमण परम्परा के अन्तर्गत ही जैन और बाद में बौद्ध शिक्षा-पद्धति विकसित हुई।

शिक्षण पद्धति का प्रयोग जैन जगत् में तत्वज्ञान के लिए किया गया है। तत्वज्ञान का विवेचन जहाँ जिस रूप में किया गया है, वहाँ उसी के अनुरूप शिक्षण-पद्धति का प्रयोग किया गया है। कठिन और सरल विवेचन के लिए अलग-अलग विधियों का विवरण मिलता है। इसी प्रकार संक्षिप्त और विस्तृत विवेचन के लिए भी भिन्न-भिन्न विधियों का आश्रय लिया गया है।

शिक्षा का सम्पूर्ण विषय सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाता है। इन्हीं तीनों के सम्मिलित रूप को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग कहा गया है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को सम्यक्-ज्ञान वस्तु के वास्तविक स्वरूप को समझकर दृढ़ निष्ठापूर्वक आत्मसात करना सम्यक्-दर्शन तथा व्यावहारिक रूप से उसे जीवन में उतारना सम्यक्-चारित्र है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में इन्हें प्राप्त करने की दो विधियाँ बतलायी हैं– (१) निसर्ग-विधि (२) अधिगम-विधि।

(१) निसर्ग-विधि[१]– निसर्ग का अर्थ है –स्वभाव, प्रज्ञावान व्यक्ति को किसी गुरु अथवा शिक्षक द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की आवश्कता नहीं रहती। जीवन के विकास क्रम में वह स्वत: ही ज्ञान के विभिन्न विषयों को सीखता रहता है तथा तत्वों का सम्यक् बोध स्वत: प्राप्त करता रहता है। उनका जीवन ही उनकी प्रयोगशाला बन जाती है। सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-बोध की उपलब्धियों को वे जीवन की प्रयोगशाला में उतार कर सम्यक्-चारित्र को उपलब्ध करते हैं, यही निसर्ग-विधि है।

(२) अधिगम-विधि[२]– अधिगम का अर्थ है पदार्थ का ज्ञान। दूसरों के उपदेशपूर्वक पदार्थों का जो ज्ञान होता है, वह अधिगमज कहलाता है। इस विधि के द्वारा प्रतिभावान तथा अल्प प्रतिभा युक्त सभी प्रकार के व्यक्ति तत्वज्ञान प्राप्त करते हैं। यही तत्वज्ञान सम्यक्-दर्शन का कारण बनता है।

अधिगम और निसर्ग-विधि में अन्तर है तो इतना कि निसर्ग-विधि में प्रज्ञा का स्फुरण स्वत: होता है तथा अधिगम-विधि में गुरु का होना अनिवार्य है। अर्थात् गुरु के उपदेश से जीव और जगत रूपी तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना अधिगम-विधि है। इसके निम्नांकित भेद हैं– (क) निक्षेप-विधि (ख) प्रमाण-विधि (ग) नय-विधि (घ) स्वाध्याय-विधि (ङ) अनुयोगद्वार विधि।

(क) निक्षेप विधि- लोक व्यवहार में अथवा शास्त्र में जितने शब्द होते हैं, वे वहाँ किस अर्थ में प्रयोग किये गये है– इसका ज्ञान होना निक्षेप विधि है। एक ही शब्द के विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं। इन अर्थों का ज्ञान निक्षेप-विधि द्वारा किया जाता है। अर्थात् अनिश्चितता की स्थिति से निकलकर निश्चितता में पहुँचना निक्षेप विधि है। जैन मान्यतानुसार प्रत्येक शब्द के कम से कम चार अर्थ निकलते हैं। वे ही चार अर्थ उस शब्द के अर्थ सामान्य के चार विभाग हैं।[३] ये विभाग ही निक्षेप या न्यास कहलाते हैं। निक्षेप-विधि के चार विभाग निम्नलिखित हैं – (१) नाम (२) स्थापना (३) द्रव्य (४) भाव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) नाम निक्षेप– लौकिक व्यवहार चलाने के लिए किसी वस्तु का कोई नाम रख देना निक्षेप कहलाता है। नाम सार्थक या निरर्थक अथवा मूल अर्थ से सापेक्ष या निरपेक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। किन्तु जो नामकरण सिर्फ संकेत मात्र होता है, जिसमें जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया आदि की अपेक्षा नहीं होती है, वही 'नाम निक्षेप' है। अथवा जो अर्थ व्युत्पत्ति सिद्ध न हो अर्थात् व्युत्पत्ति की अपेक्षा किये बिना संकेत मात्र के लिये किसी व्यक्ति या वस्तु का नामकरण करना नाम निक्षेप विधि है।

(२) स्थापना निक्षेप– वास्तविक वस्तु की प्रतिकृति, मूर्ति, चित्र आदि बनाकर अथवा बिना आकार बनाये ही किसी वस्तु में उसकी स्थापना करके मूल वस्तु का ज्ञान कराना स्थापना निक्षेप-विधि है। इसके भी दो भेद हैं– सद्भावना स्थापना तथा असद्भावना स्थापना। सद्भावना स्थापना के अनुसार कोई प्रतिकृति बनाकर जो ज्ञान कराया जाता है, उसे सद्भावना स्थापना विधि कहते हैं तथा असद्भावना स्थापना में वस्तु की यथार्थ प्रतिकृति नहीं बनायी जाती बल्कि किसी भी आकार की वस्तु में मूल वस्तु की स्थापना कर दी जाती है।

(३) द्रव्य निक्षेप– पूर्व और उत्तर अर्थात् भूत एवं बाद की स्थिति को ध्यान में रखते हुए वस्तु का ज्ञान कराना द्रव्य निक्षेप विधि कहलाता है।

(४) भाव निक्षेप– वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर वस्तु-स्वरूप का ज्ञान कराना भाव-निक्षेप विधि है।

(ख) प्रमाण-विधि– संशय आदि से रहित वस्तु का पूर्ण रूप से ज्ञान कराना प्रमाण-विधि है।[४] इसके अन्तर्गत ज्ञेय वस्तु के विषय में सम्पूर्ण जानकारी दी जाती है। जैनाचार्यों ने प्रमाण का विस्तृत विवेचन किया है। सर्वार्थसिद्धि के अनुसार ''जो अच्छी तरह मान करता है जिसके द्वारा अच्छी तरह मान किया जाता है यह प्रमितिमात्र प्रमाण है।[५] कषायपाहुड के अनुसार ''जिसके द्वारा पदार्थ माना जाए, उसे प्रमाण कहते हैं।'' प्रमाण के द्वारा ही पूर्ण और प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक् ज्ञान ही प्रमाण है। इस प्रमाण ज्ञान को चार भागों में विभक्त किया गया है– (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) आगम और (४) उपमान। इसमें से दो मति और श्रुत परोक्ष ज्ञान हैं तथा अन्य तीन अवधि, मन: पर्याय और केवल प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

सामान्यतया प्रत्यक्ष में हम इन्द्रिय उपलब्धों को देखते हैं इसकी स्मृति भी हमें स्पष्ट दिखायी देती है। अन्य दर्शनों में प्रत्यक्ष और परोक्ष की जो व्याख्या मिलती है उससे पृथक जैन दर्शन में प्रत्यक्ष को व्याख्यायित किया गया है। जैन मान्यतानुसार प्रत्यक्ष ज्ञान हमें इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा की योग्यता से ही प्राप्त होता है और इसके विपरीत जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से प्राप्त होता है वह परोक्ष है।

अनुमान तर्कशास्त्र का प्राण है। यद्यपि अनुमान प्रत्यक्षमूलक होता है, तो भी उसका अपना वैशिष्ट्य है। अनुमान के द्वारा ही हम संसार का अधिकतर व्यवहार चला रहे हैं। अनुमान के आधार पर ही तर्कशास्त्र का विशाल भवन खड़ा हुआ है। कार्य-कारण या हेतु-हेतुमान के सिद्धान्त से अनुमान प्रमाण का प्रादुर्भाव होता है, जहाँ कार्य-कारण भाव न भी हो वहां अविनाभाव सम्बन्ध को देखकर अनुमान ज्ञान होता हुआ देखा जाता है। अनुमान के भी दो भेद हैं– स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। अनुमानकर्त्ता जब अपने अनुभूति से स्वयं ही किसी तथ्य का हेतु द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है तो वह स्वार्थानुमान कहलाता है। और जब वचन प्रयोग द्वारा किसी अन्य को वही तथ्य समझाता है तो उसका वह वचन प्रयोग परार्थानुमान कहलाता है। स्वार्थानुमान ज्ञानात्मक है तो परार्थानुमान वचनात्मक।

(३) आगम प्रमाण– सम्यक् श्रुत का ज्ञान आगम प्रमाण है अथवा आप्त या प्रामाणिक पुरुषों के शब्दों द्वारा वस्तुओं का जो ज्ञान होता है उसे आगम प्रमाण कहते हैं। क्योंकि वास्तव में वह ज्ञान आगम प्रमाण है जो श्रोता या पाठक को आप्त की मौखिक या लिखित वाणी से होता है।[७] यहाँ आप्त पुरुष से तात्पर्य है जो वस्तुओं के उनके यथार्थ रूप में जैसा जानता है वैसा ही कहता है, वह आप्त पुरुष है।[८]

(४) उपमान– सदृश्यता के आधार पर वस्तु को ग्रहण करना उपमान है। अर्थात् यदि किसी ने किसी अमुक वस्तु के बारे में कोई वाक्य सुन रखा हो और उसी प्रकार की वस्तु अचानक उसके सामने आ जाये तो पूर्व में सुने गये वाक्य का तुरन्त स्मरण हो जाता है। वह समझ जाता है कि वह वही अमुक वस्तु है, यह उपमान है। उपमा दो प्रकार की होती है– साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत।[९]

प्रमाणों का यह वर्गीकरण तर्कानुसारी होने पर भी आगमिक है। किन्तु पश्चात्वर्ती तार्किक आचार्यों ने प्रमाणों का वर्गीकरण अन्य प्रकार से किया है। उनके अनुसार प्रमाण दो प्रकार का है प्रत्यक्ष और परोक्ष।[१०] प्रत्यक्ष प्रमाण के भी दो भेद सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष[११] तथा परोक्ष प्रमाण के पांच भेद बताए गए हैं– १. स्मृति २. प्रत्यभिज्ञान ३. तर्क ४. अनुमान ५. आगम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि इस वर्गीकरण में भी पूर्वोक्त वर्गीकरण से कोई मौलिक या वस्तुगत पार्थक्य नहीं है। इसमें उपमान प्रमाण को पृथक स्थान न देकर, प्रत्यभिज्ञान में सम्मिलित कर लिया गया है। स्मरण, प्रत्यभिज्ञान तथा तर्क उस वर्गीकरण के अनुसार सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत है।

(ग) नय-विधि– किसी भी विषय का सापेक्ष निरूपण करने वाला विचार नय कहलाता है। नय दो प्रकार के हैं– १. द्रव्यार्थिक नय २. पर्यायार्थिक नय। इसमें से प्रथम नय के तीन तथा द्वितीय के चार अर्थात् कुल मिलाकर सात भेद होते है–

१. नैगम नय– अनिष्पन्न अर्थ में संकल्पमात्र को ग्रहण करने वाला नय नैगम नय है।[१२] जो नय अतीत, अनागत और वर्तमान को विकल्प रूप से साधता है वह नैगम नय है।[१३]

२. संग्रह नय– सामान्य अथवा अभेद को ग्रहण करने वाली दृष्टि संग्रहनय है।

३. व्यवहार नय – संग्रह नय के द्वारा गृहीत अर्थ का विधिपूर्वक अवहरण या भेद करना व्यवहार नय है।

४. ऋजु नय – भूत और भावी को छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करने को ऋजु नय कहते हैं।

५. शब्द नय – शब्द प्रयोगों में आने वाले दोषों को दूर करके तदनुसार अर्थ भेद की कल्पना करना शब्द नय है।

६. समभिरूढ़ नय – शब्द भेद के अनुसार अर्थभेद की कल्पना करना समभिरूढ़ नय है। सर्वार्थसिद्धि में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है– ''नाना अर्थों का समाभिरोहण करने वाला होने से यह समभिरूढ़ नय कहलाता है।

७. एवंभूत नय– यह नय सूक्ष्मतम शाब्दिक विचार हमारे सामने प्रस्तुत करता है। अर्थात् जिस शब्द का जो अर्थ होता है, उसके होने से ही उस शब्द का प्रयोग करना एवंभूत नय है।

(घ) स्वाध्याय-विधि – जैनाचार्यों द्वारा विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वाध्याय-विधि का उपयोग किया जाता था। स्वाध्याय से ही व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियां पूर्ण रूप से विकसित होकर सामने आती हैं। तत्त्वार्थसूत्र में स्वाध्याय के लिए पाँच तरीके बताए गए हैं– १. वाचना २. पृच्छना, ३. अनुप्रेक्षा, ४. आम्नाय ५. धर्मोपदेश।

१. वाचना– निर्दोष ग्रन्थ तथा उसके अर्थ का उपदेश अथवा दोनों ही उसके पात्र को प्रदान करना वाचना है।[१४] इसके भी चार भेद हैं- नन्दा, भद्रा, जया और सौम्या।

२. पृच्छना– संशय का उच्छेद अर्थात् निराकरण करने के उद्देश्य से प्रस्तुत विषय के सन्दर्भ में प्रश्न करना पृच्छना है।[१५]

३. अनुप्रेक्षा–विकारों की निर्जरा के लिए अस्थि-मज्जानुगत अर्थात् उसे पूर्ण रूप से आत्मसात् करते हुए श्रुत ज्ञान का परिशीलन करना अनुप्रेक्षा कहलाता है।

४. आम्नाय–शुद्धिपूर्वक पाठ को बार-बार दोहराना आम्नाय है।[१६]

५. धर्मोपदेश– देववन्दना के साथ मंगलपाठ पूर्वक धर्म उपदेश करना धर्मकथा है।[१७] इसके भी आक्षेपिणी, विक्षेपिणी आदि भेद हैं।

अनुयोगद्वार-विधि– पं० सुखलाल संघवी के अनुसार अनुयोग का अर्थ होता है यात्रा या विवरण और द्वार अर्थात् प्रश्न। प्रश्न ही वस्तु में प्रवेश करने के अर्थात् विचारक द्वारा उसकी तह तक पहुँचने के द्वार हैं। अर्थात् आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत व्यक्ति किसी तत्व के सम्बन्ध में तत्सम्बन्धी अनेक प्रश्नों के द्वारा अपने ज्ञान भण्डार को और समद्ध करता है, बढ़ाता है। इसके लिए वह निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव अल्प-बहुतत्व आदि चौदह प्रश्नों के द्वारा सम्यक् दर्शन प्राप्त करता है।

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त ''आदि पुराण'' में शिक्षा पद्धति के अन्य भेद भी वर्णित हैं – १. पाठ विधि, २. प्रश्नोत्तर विधि ३. शास्त्रार्थ विधि ४. श्रवण विधि ५. पद विधि, ६. उपक्रम विधि, ७. पंचांग विधि इत्यादि। ऊपर वर्णित इन शिक्षण विधियों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है–

१. पाठ-विधि – गुरु या शिक्षक शिष्यों को पाठ-विधि द्वारा अंक और अक्षर ज्ञान की शिक्षा देते हैं। इस विधि का प्रारंभ आदि तीर्थंकर ऋषभ देव से प्रारंभ होता है। इसी विधि के द्वारा उन्होंने अपनी कन्याओं ब्राह्मी और सुन्दरी को शिक्षा दी थी। इस पद्धति में गुरु द्वारा लिखे गये या दिये गये पाठ को शिष्य बार-बार लिखकर कंठस्थ करता है। सामान्यत: इस विधि का प्रयोग जैन पुराणों के समस्त पात्रों के अध्यापन में किया गया है। इस विधि में मूलत: तीन शिक्षा तत्त्व परिगणित हैं– १. उच्चारण की स्पष्टता, २. लेखन कला का अभ्यास ३. तर्कात्मक संख्या प्रणाली विधि।

२. प्रश्नोत्तर-विधि– प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग जैन वाङ्मय में कई जग़ह किया गया हे। जैसा कि प्रश्नोत्तर विधि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के नाम से स्पष्ट है कि इसमें शिष्य अथवा जिज्ञासु प्रश्न करता है और ज्ञानी गुरूजन उन प्रश्नों का उचित उत्तर देकर शिष्य का मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रश्नोत्तर विधि के माध्यम से गूढ़ और दुरुह विषय को भी सरलतापूर्वक समझाया जाता था जिससे विषयों को आत्मसात् करने में शिष्य को सरलता होती थी। इस विधि का प्रयोग प्रौढ़ और प्रतिभाशाली छात्रों के लिए किया जाता था।

३. शास्त्रार्थ विधि– शास्त्रार्थ विधि प्राचीन शिक्षा पद्धति की एक प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थापनापूर्वक विषयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। एक ही तथ्य की उपलब्धि विभिन्न प्रकार के तर्कों, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती है। उस काल में शास्त्रार्थ का मौखिक और लिखित दोनों रूप प्रचलित था। आदि पुराण में उल्लेख है कि प्राचीन काल में शास्त्रार्थ मंत्रियों के बीच आप्ततत्व की जानकारी के लिए किया जाता था। स्वपक्ष की सिद्धि और परपक्ष में दोष निकलाना ही शास्त्रार्थ विधि का उद्देश्य है। इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएं हैं– (क) 'ननु- शब्द द्वारा शंका उत्पन्न करना। (ख) 'न च' या 'इति चेन्न' द्वारा शंका का निराकरण करना। (ग) यत्चेदं 'यथेकं' द्वारा पक्ष का निराकरण करना। (घ) अनवस्था, चक्रक, प्रसंग साधन आदि दोषों का उद्भावना या प्रस्तुत करना (ङ) 'एव' 'आह' 'अत्र' 'यस्तु' आदि संकेताशों द्वारा कथनों और उद्धरणों को उपस्थित कर समालोचन करना। (च) विकल्पों को उठाकर प्रतिपक्षी का समाधान करते हुए स्वपक्ष के सिद्धि के लिए आक्षेपिणी विक्षेपिणी' जैसे कथाओं का प्रयोग करना। (छ) 'तदुक्तं' 'नादि' जैसे शब्दों का किसी वस्तु या कथन पर बल देने के लिए प्रयोग करना।[१८]

४. उपक्रम-विधि[१९]–जिसके द्वारा श्रोता शास्त्र को उपक्रम्यते अर्थात् समीप करता है उसे उपक्रम कहते हैं। अर्थात् उद्दिष्ट पदार्थ को श्रोताओं की बुद्धि में बैठा देना, उन्हें अच्छी तरह समझा देना उपक्रम है। इसे उपोद्घात भी कहते हैं।

जिन मनुष्यों ने किसी, शास्त्र के नाम, आनुपूर्वि प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार[२०] नहीं जाने हैं वे उस शास्त्र के पठन-पाठन आदि क्रिया फल के लिये प्रवृत्ति नहीं करते हैं। अत: विषयों के पाठ और उसके स्पष्टीकरण के लिए श्रीभगवद्गुणधराचार्य प्रणीत कषायपाहुड़ की चूर्णि में श्री यतिविषभाचार्य ने इस विधि में ऊपर वर्णित पांच विषयों का परिज्ञान होना आवश्यक माना है।

५. श्रवण-विधि– इस विधि के अनुसार किसी भी तथ्य को सुनकर या उसका श्रवण करके उसे ग्रहण करना श्रवण विधि है। विशेषावश्यक भाष्य[२१] में श्रवण में सात विधियों का उल्लेख किया गया है– क. गुरु द्वारा कही गयी बातों को चुपचाप सुनना, ख. उसे बिना विरोध स्वीकार करना, ग. उसे अच्छा मानते हुए उसका अनुकरण करना, घ. उस विषय में अपनी जिज्ञासा व्यक्त करना ड. उसकी मीमांसा करना, च. उस विषय का पूर्ण रूप से पारायण करना, छ. गुरु की भांति स्वयं उस विषय को अभिव्यक्त करना।

६. पंचांग-विधि– पंचांग विधि के द्वारा वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और उपदेश जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है किसी विषय को समझा जाता था।

७. पद-विधि–'पद्यन्ते ज्ञायन्तेऽनेनेति पदं' अर्थात् जिसके द्वारा (अर्थ) जाना जाता है वह पद है।[२२] नामिक, नैपातिक, औपसर्गिक, आख्यानिक और मिश्र नामक इसके पांच भेद है। पदविधि द्वारा शब्दों का वर्गीकरण करके उसके अर्थ की निश्चित अवधारणा प्रकट की जाती है तथा इसके द्वारा शब्दों के नैसर्गिक शक्ति का बोध किया जाता है।

८. प्ररूपणा-विधि – वाच्य–वाचक, प्रतिपाद्य-प्रतिपादक एवं विषय-विषयी भाव की दृष्टि से शब्दों का आख्यान करना प्ररूपणा विधि है। गुरु शिष्य को 'किं' 'कस्य' 'केन' 'क्व' 'कियत्' 'कालं' एवं 'कति विधं' इन छ: प्रश्नों द्वारा निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान का साधन करते हुए अध्यापन करना प्ररूपणा विधि है।

इसके अतिरिक्त भी पदार्थविधि, संगोष्ठि, विधि, व्याख्या विधि आदि शिक्षा की पद्धतियों का प्रयोग प्राचीन काल में गुरुओं, आचार्यों द्वारा किया जाता था। जिसका उद्देश्य गूढ़ से गूढ़ विषय को सरल और सुबोध बनाकर छात्रों के सामने इस रूप में प्रस्तुत करना था कि विषय को आत्मसात् करने में शिष्य को कठिनाई न हो, यही कारण था कि प्राचीन काल मे गुरु की छत्रछाया में ही रहकर बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक विकास किया जाता था। क्योंकि गुरु के सानिध्य में रहकर शिष्य केवल शिक्षा ही प्राप्त नहीं करता था अपितु उसका जीवन संस्कार, व्यवहार, कर्तव्य-बोध आदि से पूर्ण परिष्कृत हो जाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ सूची

१. *तत्त्वार्थ, सूत्र, विवेचन सुखलाल संघवी, १/३*

२. *अधिगमोऽर्थावबोध:। यत्परोपदेशपूर्वं जीवाद्यधिगमनिमित्तं तदुत्तरम्। सर्वार्थसिद्धि १/३/१२*

३. *जैनसिद्धान्त दीपिका, ९/५*

४. *सम्यक्ज्ञानं प्रमाणं..। प्रमाण-परीक्षा, पृ० १*

५. *सर्वार्थसिद्धि, १/१०, ९८/२*

६. *कषायपाहुड, १/१/१, २७, ३७, ६*

७. *न्यायदीपिका, ३/७३/११२*

८. *अभिधेयं वस्तु यथावस्थितम् योग जानीते, यथाज्ञानं चाभिद्यत्ते स आप्त:। वही ४/४*

९. *अनुयोगद्वार ४५८*

१०. *तत्त्वार्थ सूत्र, १/१०/१२ विवेचनकर्ता पं० फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री*

११. *जैन न्याय तर्कसंग्रह (यशोविजय), प्रमाण खण्ड।*

१२. *सर्वार्थसिद्धि, १/३३/१४१/२*

१३. *कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पृष्ठ २७१*

१४. *सर्वार्थसिद्धि ९/२५/४४३/४*

१५. *सवार्थसिद्धि ९/२५/४४३/४*

१६. *सवार्थसिद्धि ९/२५/४४३/५*

१७. *तत्त्वार्थसूत्र ७/८७*

१८. *जैन वाङ्मय में शिक्षा के तत्त्व, पृ० १२०, डा० निशानन्द शर्मा, प्रकाशक–प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (बिहार) १९८८*

१९. *कषायपाहुड (जयधवला) १/९/११/७*

२०. *जयधवला सहितं कषायपाहुड, चूर्णि, भाग-१, पृ० ११, द्वितीय*

२१. *विशेषावश्यक भाष्य, संपादक – डा० नथमल टांटिया, पृ० १६८-१६९*

२२. *न्यायबिन्दु टीका १/७/१४०/१*

■

डॉ० इंदरराज बैद

बाँका राजस्थान

बाँकी पगड़ी, बाँकी मूछें, बाँकी जिसकी शान है,
बाँके जिसके युद्ध बाँकुरे, बाँका राजस्थान है।
जिसकी गोदी का हर बालक ज्वालामुखी सरीखा है,
जिसकी हर नारी ने चलना अंगारों पर सीखा है।
जिसके पानी के आगे दुनिया का पानी फीका है।
ऐसा गौरवधाम हिंद का अपना वंश स्थान है।
अपना वंशस्थान तभी तो बाँका राजस्थान है।।
खड़ी अभी तक उसी शान से दुर्गों की प्राचीर यहाँ,
टूटी कितनी बार हारकर जुल्मों की शमशीर यहाँ,
लेकिन अब तक रही सुनहरी ही इसकी तस्वीर यहाँ,
भारत भर का बल विक्रम चिर विजयी इसकी आन है,
विजयी इसकी आन तभी तो बाँका राजस्थान है।।
यह पद्मिनियों की भूमि यहाँ का इतिहास निराला है,
फूलों की है सेज आज तो कल जौहर की ज्वाला है,
सुधा समझकर मीराँ हँस पी जाती विष का प्याला है,
सीस काट देती क्षत्राणी ऐसा यहाँ विधान है,
ऐसा यहाँ विधान तभी तो बाँधा राजस्थान है।।
बलिदानों के फूल खिले हैं इसकी लोहित माटी में,
खेल चुके हैं युद्ध बाँकुरे होली हल्दीघाटी में,
अनन्य यहाँ के वीर बलि को जीने की परिपाटी में
जीने-मरने का कुछ इसका न्यारा ही उनमान है,
न्यारा ही उनमान तभी तो बाँका राजस्थान है।।
धरा प्रतापी सिंहों की यह लाखों भामाशाहों की,
दानी-बलिदानों बेटों की पन्ना-सी माताओं की,
बसुंधरा है पावन भावी भारत की आशाओं की,
सीधे सच्चे शब्दों में यह नन्हा हिन्दुस्तान है,
नन्हा हिन्दुस्तान तभी तो बाँका राजस्थान है।।
अणुशक्ति की नूतन गंगा जहाँ हृदय में थी उतरी,
राजधरित्री पोकरणी वह सदा रहेगी गर्व भरी,
मारवाड़, अजमेर, उदयपुर, विश्व रम्य जयपुर नगरी
रोमांचक भूखंड देश की इनके कौन समान है,
इनके कौन समान तभी तो बाँका राजस्थान है।।

चेन्नई

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org